Chapter तीस

यदुवंश का संहार

इस अध्याय में भगवान् की लीलाओं के समापन के प्रसंग में यदुवंश के विनाश की चर्चा हुई है।

श्री उद्धव के बदरिकाश्रम प्रस्थान के बाद जब भगवान् श्रीकृष्ण ने अनेक अपशकुन देखे, तो उन्होंने यादवों को सलाह दी कि वे द्वारका छोड़ कर सरस्वती-तट पर स्थित प्रभास क्षेत्र जाँय और दुर्भाग्य के प्रतिकार हेतु *स्वस्त्ययन* तथा अन्य अनुष्ठान सम्पन्न करें। वे सभी उनकी सलाह मान कर प्रभास गये। वहाँ पर वे उत्सव मनाने में लीन हो गये और कृष्ण की मायाशक्ति से मदिरा-पान करके उन्मत्त हो उठे। इस तरह अपनी बुद्धि खोकर वे परस्पर लड़ने-झगड़ने और एक-दूसरे को मारने लगे जिससे अन्त में एक भी व्यक्ति जीवित न बचा।

तत्पश्चात् श्री बलदेव समुद्र-तट पर गये और वहाँ उन्होंने योगशक्ति से अपना शरीर त्याग दिया। बलदेव के तिरोधान को देख कर श्रीकृष्ण मौन भाव से भूमि पर बैठ गये। तब जरा नाम के शिकारी ने भगवान् के पैर के तलवे को हिरन समझ कर उसे तीर से बेध दिया। किन्तु शिकारी को अपनी भूल का तुरन्त ही पता चल गया, अत: वह श्रीकृष्ण के चरणों पर गिर कर उनसे दण्ड देने के लिए याचना करने लगा। कृष्ण ने उत्तर में शिकारी से कहा कि उसने जो कुछ किया है, वह उनकी अपनी इच्छा के अनुसार है। तब भगवान् ने शिकारी को वैकुण्ठ भेज दिया।

जब कृष्ण का सारथी, दारुक, घटनास्थल पर आया और कृष्ण को उस अवस्था में देखा तो वह

शोक करने लगा। कृष्ण ने उससे द्वारका जाने, वहाँ के निवासियों को यदुकुल के संहार के विषय में सूचित करने तथा द्वारका छोड़ कर इन्द्रप्रस्थ जाने की सलाह दी। दारुक ने आज्ञाकारी होते हुए यह आदेश पूरा किया।

श्रीराजोवाच
ततो महाभागवत उद्धवे निर्गते वनम् ।
द्वारवत्यां किमकरोद्भगवान्भूतभावनः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-राजा उवाच—राजा ने कहा; ततः—तब; महा-भागवते—महान् भक्त; उद्धवे—उद्धव के; निर्गते—चले जाने पर; वनम्—वन में; द्वारवत्याम्—द्वारका में; किम्—क्या; अकरोत्—किया; भगवान्—भगवान् ने; भूत—सारे जीवों के; भावनः—रक्षक।

राजा परीक्षित ने कहा : जब महान् भक्त उद्धव जंगल चले गये तो समस्त जीवों के रक्षक भगवान् ने द्वारका नगरी में क्या किया?

तात्पर्य : अब परीक्षित महाराज शुकदेव गोस्वामी से इस स्कन्ध के प्रथम अध्याय के शीर्षक के विषय में—यदुवंश के संहार तथा श्रीकृष्ण के वैकुण्ठ लौट जाने के विषय में—पूछ रहे हैं। चूँकि भगवान् कृष्ण यदुवंश के सामान्य सदस्य की भूमिका निभा रहे थे, अत: वे अपनी पार्थिव लीलाओं को त्याग कर ब्राह्मणों के शाप के प्रति अपने भाव व्यक्त करते प्रतीत हो रहे थे। वस्तुत: भगवान् कृष्ण को कोई शाप नहीं दे सकता। नारद मुनि तथा अन्य मुनिगण जिन्होंने यदुवंश को शाप दिया, वे भगवान् के नित्य भक्त हैं और वे उन्हें शाप नहीं दे सकते थे। अतएव, अपनी लीलाएँ समाप्त करने तथा यदुकुल के साथ पृथ्वी छोड़ने में, भगवान् कृष्ण ने अपनी अन्तरंगा शक्ति तथा निजी इच्छा का प्रदर्शन किया क्योंकि भगवान् की परम शक्ति को ललकारा नहीं जा सकता।

ब्रह्मशापोपसंसृष्टे स्वकुले यादवर्षभः ।
प्रेयसीं सर्वनेत्राणां तनुं स कथमत्यजत् ॥ २ ॥

शब्दार्थ

ब्रह्म-शाप—ब्राह्मणों के शाप से; उपसंसृष्टे—विनष्ट किये जाने पर; स्व-कुले—अपने ही परिवार में; यादव-ऋषभः—यदुओं के प्रमुख; प्रेयसीम्—अत्यन्त प्रिय; सर्व-नेत्राणाम्—सारे नेत्रों को; तनुम्—शरीर; सः—उन्होंने; कथम्—कैसे; अत्यजत्—त्यागा।

ब्राह्मणों के शाप से अपने ही वंश के नष्ट हो जाने के बाद, यदुओं में श्रेष्ठ भगवान् ने किस तरह अपना शरीर छोड़ा जो सारे नेत्रों की परमप्रिय वस्तु था?

तात्पर्य : इस श्लोक के सम्बन्ध में श्रील जीव गोस्वामी की व्याख्या है कि भगवान् कभी अपने

दिव्य सच्चिदानन्द शरीर को त्यागते नहीं। इसलिए *कथम्* शब्द यह सूचित करता है कि, ''यह कैसे सम्भव हो सकता है'' जिसका आशय यह है कि भगवान् कृष्ण के लिए अपना नित्य स्वरूप जो *प्रेयसीं सर्व-नेत्राणाम्* है, वास्तव में कभी भी त्याग करना संभव नहीं है।

प्रत्याक्रष्टुं नयनमबला यत्र लग्नं न शेकुः
कर्णाविष्टं न सरति ततो यत्सतामात्मलग्नम् ।
यच्छ्रीर्वाचां जनयति रतिं किं नु मानं कवीनां
दृष्ट्वा जिष्णोर्युधि रथगतं यच्च तत्साम्यमीयुः ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

प्रत्याक्रष्टुम्—दूर हटाने में; नयनम्—अपनी आँखें; अबलाः—स्त्रियाँ; यत्र—जिसमें; लग्नम्—लिप्त; न शेकुः—सक्षम नहीं थीं; कर्ण—कान; आविष्टम्—घुस कर; न सरति—छोड़ती नहीं; ततः—तत्पश्चात्; यत्—जो; सताम्—ऋषियों-मुनियों का; आत्म—हृदयों में; लग्नम्—लगा हुआ; यत्—जिसका; श्रीः—सौन्दर्य; वाचाम्—शब्दों का; जनयति—उत्पन्न करता है; रतिम्—विशेष आनन्ददायक आकर्षण; किम् नु—क्या कहा जाय; मानम्—ख्याति; कवीनाम्—कवियों की; दृष्ट्वा—देख कर; जिष्णोः—अर्जुन के; युधि—युद्धक्षेत्र में; रथ-गतम्—रथ पर; यत्—जो; च—तथा; तत्-साम्यम्—उनके समान पद; ईयुः—उन्होंने प्राप्त किया।

एक बार उनके दिव्य रूप पर अपनी आँखें गड़ा देने पर, स्त्रियाँ उन्हें हटा पाने में असमर्थ होती थीं और यदि वह रूप एक बार मुनियों के कानों में प्रवेश कर जाता और उनके हृदयों में गड़ जाता, तो फिर वह हटाये नहीं हटता था। ख्याति पाने के विषय में क्या कहा जाय, जिन महान् कवियों ने भगवान् के रूप के सौन्दर्य का वर्णन किया उनके शब्द दिव्य मोहक आकर्षण में फँस कर रह गये। और उस रूप को अर्जुन के रथ पर देख कर कुरुक्षेत्र की युद्धभूमि के सारे योद्धाओं ने भगवान् जैसे आध्यात्मिक शरीर प्राप्त कर मोक्ष-लाभ उठाया।

तात्पर्य : वृन्दावन की गोपियाँ तथा आदि लक्ष्मी रुक्मिणी जैसी दिव्य मुक्तात्माएँ भगवान् के आध्यात्मिक शरीर का निरन्तर ध्यान करती रहती थीं। महा मुक्त ऋषिगण (*सताम्*) कृष्ण के शरीर के विषय में सुन कर, अपने हृदयों को उससे हटा नहीं पाते थे। भगवान् का शारीरिक सौन्दर्य महान् मुक्त कवियों के प्रेम तथा कवित्व शक्ति को बढ़ाने वाला था और कुरुक्षेत्र के योद्धाओं ने भगवान् कृष्ण के शरीर को देखने मात्र से भगवान् जैसा नित्य शरीर पाकर मोक्ष प्राप्त किया। इसलिए भगवान् कृष्ण के नित्य आनन्द रूप को किसी भी तरह भौतिक रूप में कल्पित करना असम्भव है। जो लोग कल्पना करते हैं कि भगवान् कृष्ण ने अपना नित्य स्वरूप त्यागा वे निश्चय ही भगवान् की मायाशक्ति द्वारा विमोहित हैं।

श्री ऋषिरुवाच
दिवि भुव्यन्तरिक्षे च महोत्पातान्समुत्थितान् ।
दृष्ट्वासीनान्सुधर्मायां कृष्णः प्राह यदूनिदम् ॥ ४॥

शब्दार्थ

श्री-ऋषिः उवाच—ऋषि (शुकदेव गोस्वामी) ने कहा; दिवि—आकाश में; भुवि—पृथ्वी पर; अन्तरिक्षे—बाह्य अवकाश में; च—तथा; महा-उत्पातान्—महान् उत्पातों को; समुत्थितान्—प्रकट हो चुके; दृष्ट्वा—देख कर; आसीनान्—आसन जमाये हुए; सु-धर्मायाम्—सुधर्मा नामक राजसभा में; कृष्णः—कृष्ण ने; प्राह—कहा; यदून्—यदुओं से; इदम्—यह।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : आकाश, पृथ्वी तथा बाह्य अवकाश में अनेक उत्पात-चिन्ह देख कर भगवान् कृष्ण ने सुधर्मा नामक सभाभवन में एकत्र यदुओं से इस प्रकार कहा।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी के अनुसार अशुभ संकेत थे—आकाश में सूर्य के चारों ओर मंडल का प्रकट होना, पृथ्वी पर छोटे-छोटे भूकम्प आना तथा बाह्य अवकाश में क्षितिज पर अप्राकृतिक लालिमा को प्रकट होना। ये तथा इसी तरह के अन्य अपशकुनों का निराकरण कर पाना असम्भव था क्योंकि इनकी योजना स्वयं कृष्ण ने की थी।

श्रीभगवानुवाच
एते घोरा महोत्पाता द्वार्वत्यां यमकेतवः ।
मुहूर्तमपि न स्थेयमत्र नो यदुपुङ्गवाः ॥ ५॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् ने कहा; एते—ये; घोराः—भयावने; महा—महान्; उत्पाताः—अपशकुन; द्वार्वत्याम्—द्वारका में; यम—मृत्यु के राजा के; केतवः—झंडे; मुहूर्तम्—एक क्षण; अपि—भी; न स्थेयम्—रुकना चाहिए; अत्र—यहाँ; नः—हमें; यदु-पुङ्गवाः—हे यदुओं में श्रेष्ठ।

भगवान् ने कहा : अरे यदुवंश के नायको, जरा इन सारे भयावने अपशकुनों पर ध्यान दो जो द्वारका में मृत्यु के झंडों की तरह प्रकट हुए हैं। अब हमें यहाँ पर क्षण-भर भी रुकना नहीं चाहिए।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने वैदिक ग्रंथों से पर्याप्त प्रमाण यह सिद्ध करने के लिए जुटाये हैं कि भगवान् का मनुष्य जैसा स्वरूप तथा उनके नाम, धाम, साज-सामग्री तथा संगी, नित्य तथा भौतिक कल्मष से रहित आध्यात्मिक स्वरूप हैं। (*देखें परिशिष्ट पृष्ठ ...*) इस प्रसंग में आचार्य ने आगे भी व्याख्या की है कि चूँकि जीवों को अपने पापकर्मों का फल भोगना होता है, इसलिए भगवान् उन्हें कलियुग में दण्ड देने की व्यवस्था करते हैं। दूसरे शब्दों में, भगवान् यह नहीं चाहते कि बद्धजीव

पापी बनें और कष्ट भोगें किन्तु चूँकि वे पहले से पापी होते हैं अतएव भगवान् उपयुक्त युग की सृष्टि करते हैं जिसमें अधर्म के तिक्त फलों का वे स्वाद चख सकें।

चूँकि भगवान् कृष्ण इस भौतिक जगत में अपने विभिन्न रूपों में धर्म की स्थापना करते हैं, इसलिए द्वापर युग के अन्त में पृथ्वी पर धर्म अत्यन्त प्रबल था। सारे प्रधान असुरों का वध हो चुका था; सारे ऋषि-मुनियों, सन्तों तथा भक्तों को प्रोत्साहन मिला था; उन्हें प्रबुद्ध किया गया था और प्रबल बनाया गया था, इसलिए अधर्म के लिए बहुत कम अवकाश था। यदि भगवान् कृष्ण वैकुण्ठ को अपने आध्यात्मिक शरीर में संसार के समक्ष गए होते, तो कलियुग के लिए पल्लवित हो पाना कठिन हो जाता। भगवान् कृष्ण ने संसार को उसी तरह से छोड़ा जिस तरह रामचन्द्र के अवतार में किया था और लाखों वर्षों बाद भी करोडों पवित्र पुरुष भगवान् की इस अद्‌भुत लीला की चर्चा चलाते हैं। किन्तु कलियुग के लिए मार्ग प्रशस्त करने के लिए भगवान् कृष्ण ने इस जगत को इस तरह छोड़ा जो उन लोगों को चकराने वाला है, जो उनके कट्टरभक्त नहीं हैं।

भगवान् के नित्य रूप का वर्णन सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय में पाया जाता है और सारे महान् आचार्यों के अनुसार, जिनमें शंकराचार्य तथा चैतन्य महाप्रभु सम्मिलित हैं, भगवान् का नित्य रूप परब्रह्म का सर्वोच्च ज्ञान है। यद्यपि उच्च भक्तों के लिए भगवान् कृष्ण का नित्य आध्यात्मिक रूप एक अनुभूत तथ्य है, किन्तु जो लोग कृष्णभावनामृत में पिछड़े हैं उनके लिए भगवान् की अचिन्त्य लीलाएँ एवं योजना कभी कभी पूरी समझ के परे रहती है।

स्त्रियो बालाश्च वृद्धाश्च शङ्खोद्धारं व्रजन्त्वितः ।
वयं प्रभासं यास्यामो यत्र प्रत्यक्सरस्वती ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

स्त्रियः—स्त्रियाँ; बालाः—बालक; च—तथा; वृद्धाः—बूढ़े लोग; च—तथा; शङ्ख-उद्धारम्—शंखोद्धार (जो द्वारका तथा प्रभास के बीचोबीच है) नामक पवित्र स्थान तक; व्रजन्तु—जाना चाहिए; इतः—यहाँ से; वयम्—हम; प्रभासम्—प्रभास तक; यास्यामः—जायेंगे; यत्र—जहाँ; प्रत्यक्—पश्चिमवाहिनी; सरस्वती—सरस्वती नदी।

स्त्रियों, बालकों तथा बूढ़े लोगों को यह नगर छोड़ कर शंखोद्धार जाना चाहिए। हम सभी प्रभास क्षेत्र चलेंगे जहाँ सरस्वती नदी पश्चिम वाहिनी है।

तात्पर्य : *वयम्* शब्द यदुवंश के हृष्टपुष्ट पुरुषों का द्योतक है।

तत्राभिषिच्य शुचय उपोष्य सुसमाहिताः ।
देवताः पूजयिष्यामः स्नपनालेपनार्हणैः ॥ ७॥

शब्दार्थ

तत्र—वहाँ; अभिषिच्य—स्नान करके; शुचयः—पवित्र हुए; उपोष्य—उपवास रख कर; सु-समाहिताः—अपने मनों को स्थिर करके; देवताः—देवतागण; पूजयिष्यामः—हम पूजन करेंगे; स्नपन—स्नान करके; आलेपन—चंदन लगाकर; अर्हणैः—तथा विविध भेंटों से।

वहाँ हम शुद्धि के लिए स्नान करें, उपवास रखें और अपने मनों को ध्यान में स्थिर करें। तत्पश्चात् देवताओं की मूर्तियों को स्नान कराकर हम उनका पूजन करें, चन्दन का लेप करें और उन्हें विविध भेंटें अर्पित करें।

ब्राह्मणांस्तु महाभागान्कृतस्वस्त्ययना वयम् ।
गोभूहिरण्यवासोभिर्गजाश्वरथवेश्मभिः ॥ ८॥

शब्दार्थ

ब्राह्मणान्—ब्राह्मणों को; तु—तथा; महा-भागान्—अत्यन्त भाग्यशाली; कृत—सम्पन्न करने के बाद; स्वस्ति-अयनाः—सौभाग्य के लिए उत्सव; वयम्—हम; गो—गौवों; भू—भूमि; हिरण्य—स्वर्ण; वासोभिः—तथावस्त्रों से; गज—हाथियों; अश्व—घोड़ों; रथ—रथों; वेश्मभिः—तथा घरों से।

अत्यन्त भाग्यशाली ब्राह्मणों की सहायता से स्वस्तिवाचन कराने के बाद हम उन बाह्मणों को गौवें, भूमि, सोना, वस्त्र, हाथी, घोड़े, रथ तथा घर भेंट करके उनकी पूजा करें।

विधिरेष ह्यरिष्टघ्नो मङ्गलायनमुत्तमम् ।
देवद्विजगवां पूजा भूतेषु परमो भवः ॥ ९॥

शब्दार्थ

विधिः—संस्तुत विधि; एषः—यह; हि—निस्सन्देह; अरिष्ट—अशुभ अड़चनों को; घ्नः—नष्ट करने वाला; मङ्गल-अयनम्—सौभाग्य लाने वाला; उत्तमम्—सर्वश्रेष्ठ; देव—देवताओं; द्विज—ब्राह्मणों; गवाम्—तथागौवों में; पूजा—पूजा; भूतेषु—जीवों में से; परमः—सर्वोत्तम; भवः—पुनर्जन्म।

अपने आसन्न संकट का सामना करने के लिए निस्सन्देह यह उपयुक्त विधि है और इससे निश्चित ही सर्वोच्च सौभाग्य प्राप्त होगा। देवताओं, ब्राह्मणों तथा गौवों की ऐसी पूजा सारे जीवों को सर्वोच्च जन्म दिलाने वाली हो सकती है।

इति सर्वे समाकर्ण्य यदुवृद्धा मधुद्विषः ।
तथेति नौभिरुत्तीर्य प्रभासं प्रययू रथैः ॥ १०॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; सर्वे—सभी लोग; समाकर्ण्य—सुन कर; यदु-वृद्धाः—यदुकुल के गुरुजन; मधु-द्विषः—मधु राक्षस के शत्रु भगवान् कृष्ण से; तथा—ऐसा ही हो; इति—इस प्रकार; नौभिः—नावों द्वारा; उत्तीर्य—पार करके; प्रभासम्—प्रभास तक; प्रययुः—गये; रथैः—रथों से।

मधु के शत्रु भगवान् कृष्ण से ये शब्द सुन कर, यदुवंश के गुरुजनों ने अपनी सहमति ''तथास्तु'' कह कर व्यक्त कर दी। नावों से समुद्र को पार करने के बाद वे रथों से प्रभास की ओर बढ़े।

तस्मिन्भगवतादिष्टं यदुदेवेन यादवाः ।
चक्रुः परमया भक्त्या सर्वश्रेयोपबृंहितम् ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

तस्मिन्—वहाँ; भगवता—भगवान् द्वारा; आदिष्टम्—आदेश दिये गये; यदु-देवेन—यदुओं के स्वामी द्वारा; यादवाः—यादव लोगों ने; चक्रुः—सम्पन्न किया; परमया—दिव्य; भक्त्या—भक्ति से; सर्व—समस्त; श्रेयः—शुभ अनुष्ठानों से; उपबृंहितम्—युक्त।

वहाँ पर यादवों ने अत्यन्त भक्ति के साथ अपने स्वामी भगवान् कृष्ण के आदेशानुसार धार्मिक अनुष्ठान सम्पन्न किये। उन्होंने अन्य विविध शुभ अनुष्ठान भी सम्पन्न किये।

ततस्तस्मिन्महापानं पपुर्मैरेयकं मधु ।
दिष्टविभ्रंशितधियो यद्द्रवैर्भ्रश्यते मतिः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

ततः—तब; तस्मिन्—वहाँ; महा—प्रचुर मात्रा में; पानम्—पेय; पपुः—पिया; मैरेयकम्—मैरेय नामक; मधु—मधुर स्वाद वाली; दिष्ट—भाग्यवश; विभ्रंशित—नष्ट हुई; धियः—उनकी बुद्धि; यत्—जिस पेय से; द्रवैः—द्रव पदार्थों से; भ्रश्यते—भ्रष्ट हो जाता है; मतिः—मन।

तब दैव द्वारा बुद्धि भ्रष्ट किये गये वे सब खुले मन से मधुर मैरेय पेय के पीने में लग गये जो मन को पूरी तरह मदोन्मत्त कर देता है।

तात्पर्य : *दिष्ट* शब्द भगवान् की इच्छा का सूचक है। इस स्कन्ध के प्रथम अध्याय ''यदुवंश को शाप'' में इस घटना का विस्तार से वर्णन हुआ है।

महापानाभिमत्तानां वीराणां दृप्तचेतसाम् ।
कृष्णमायाविमूढानां सङ्घर्षः सुमहानभूत् ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

महा-पान—अत्यधिक पीने से; अभिमत्तानाम्—मदोन्मत्त हुए; वीराणाम्—वीरों के; दृप्त—उद्धत; चेतसाम्—मन; कृष्ण-माया—कृष्ण की माया से; विमूढानाम्—मोहग्रस्त हुए; सङ्घर्षः—झगड़ा; सु-महान्—बहुत बड़ा; अभूत्—हुआ।

यदुवंश के वीरगण अत्यधिक पान के कारण उन्मत्त हो उठे और उद्धत हो गये। जब वे

भगवान् कृष्ण की निजी शक्ति से इस तरह विमोहित थे, तो उनके बीच भयानक झगड़ा उठ खड़ा हुआ।

युयुधुः क्रोधसंरब्धा वेलायामाततायिनः ।
धनुर्भिरसिभिर्भल्लैर्गदाभिस्तोमरर्ष्टिभिः ॥ १४॥

शब्दार्थ

युयुधुः—लड़ने लगे; क्रोध—क्रोध से; संरब्धाः—बुरी तरह उत्तेजित; वेलायाम्—समुद्र-तट पर; आततायिनः—हथियार लिए; धनुर्भिः—धनुषों से; असिभिः—तलवारों से; भल्लैः—भालों से; गदाभिः—गदाओं से; तोमर—बर्छों से; ऋष्टिभिः—ऋष्टियों से।

क्रुद्ध होकर उन्होंने अपने अपने धनुष-बाण, तलवारें, भाले, गदाएँ, बर्छे, तोमर ले लिये और समुद्र के किनारे एक-दूसरे पर आक्रमण करने लगे।

पतत्पताकै रथकुञ्जरादिभिः
खरोष्ट्रगोभिर्महिषैर्नरैरपि ।
मिथः समेत्याश्वतरैः सुदुर्मदा
न्यहन्शरैर्दद्भिरिव द्विपा वने ॥ १५॥

शब्दार्थ

पतत्-पताकैः—उड़ती पताकाओं से; रथ—रथों पर; कुञ्जर—हाथी; आदिभिः—तथा अन्य वाहनों से; खर—गधों; उष्ट्र—ऊँटों; गोभिः—तथा बैलों पर; महिषैः—भैसों पर; नरैः—मनुष्यों पर; अपि—भी; मिथः—परस्पर; समेत्य—मिल कर; अश्वतरैः—खच्चरों पर; सु-दुर्मदाः—अत्यधिक क्रुद्ध; न्यहन्—आक्रमण किया; शरैः—तीरों से; दद्भिः—अपने दाँतों से; इव—मानो; द्विपाः—हाथी; वने—जंगल में।

हाथियों पर तथा फहराती ध्वजाओं वाले रथों पर तथा गधों, ऊँटों, बैलों, भैसों, खच्चरों एवं मनुष्यों पर भी सवार होकर अत्यन्त क्रुद्ध योद्धागण एक-दूसरे के पास आये और उन्होंने एक-दूसरे पर बाणों से वेगपूर्वक उसी तरह आक्रमण किया जिस तरह जंगल में हाथी अपने दाँतों से एक-दूसरे पर आक्रमण करते हैं।

प्रद्युम्नसाम्बौ युधि रूढमत्सरा-
वक्रूरभोजावनिरुद्धसात्यकी ।
सुभद्रसङ्ग्रामजितौ सुदारुणौ
गदौ सुमित्रासुरथौ समीयतुः ॥ १६॥

शब्दार्थ

प्रद्युम्न-साम्बौ—प्रद्युम्न तथा साम्ब; युधि—युद्ध में; रूढ—उकसायी हुई; मत्सरौ—उनकी शत्रुता; अक्रूर-भोजौ—अक्रूर तथा भोज; अनिरुद्ध-सात्यकी—अनिरुद्ध तथा सात्यकि; सुभद्र-सङ्ग्रामजितौ—सुभद्र तथा संग्रामजित; सु-दारुणौ—भयंकर;

गदौ—दोनों गद (एक श्रीकृष्ण का भाई और दूसरा उनका पुत्र); सुमित्रा-सुरथौ—सुमित्र तथा सुरथ; समीयतुः—एक-दूसरे से मिले।

आपसी शत्रुता भड़कने से प्रद्युम्न साम्ब से घनघोर लड़ाई करने लगा, अक्रूर कुन्तिभोज से, अनिरुद्ध सात्यकि से, सुभद्र संग्रामजित से, सुमित्र सुरथ से तथा दोनों गद एक-दूसरे से लड़ने लगे।

अन्ये च ये वै निशठोल्मुकादयः
सहस्रजिच्छतजिद्भानुमुख्याः ।
अन्योन्यमासाद्य मदान्धकारिता
जघ्नुर्मुकुन्देन विमोहिता भृशम् ॥ १७॥

शब्दार्थ

अन्ये—अन्य; च—तथा; ये—जो; वै—निस्सन्देह; निशठ-उल्मक-आदयः—निशठ, उल्मुक इत्यादि; सहस्रजित्-शतजित्-भानु-मुख्यः—सहस्रजित, शतजित तथा भानु इत्यादि; अन्योन्यम्—एक-दूसरे से; आसाद्य—मिल कर; मद—नशे से; अन्ध-कारिताः—अन्धे हुए; जघ्नुः—मार डाला; मुकुन्देन—मुकुन्द द्वारा; विमोहिताः—विमोहित; भृशम्—पूरी तरह से।

अन्य लोग भी, यथा निशठ, उल्मुक, सहस्रजित, शतजित तथा भानु एक-दूसरे से गुँथ गये और उन्होंने नशे से अंधे हुए एवं भगवान् मुकुन्द द्वारा पूर्णतया विमोहित हुए एक-दूसरे को मार डाला।

दाशार्हवृष्ण्यन्धकभोजसात्वता
मध्वर्बुदा माथुरशूरसेनाः ।
विसर्जनाः कुकुराः कुन्तयश्च
मिथस्तु जघ्नुः सुविसृज्य सौहृदम् ॥ १८॥

शब्दार्थ

दाशार्ह-वृष्णि-अन्धक-भोज-सात्वताः—दाशार्ह, वृष्टि, अन्धक, भोज तथा सात्वतगण; मधु-अर्बुदाः—मधु तथा अर्बुद; माथुर-शूरसेनाः—मथुरा तथा शूरसेन के निवासी; विसर्जनाः—विसर्जनगण; कुकुराः—कुकुरगण; कुन्तयः—कुन्तिगण; च—भी; मिथः—परस्पर; तु—तथा; जघ्नुः—मार डाला; सु-विसृज्य—पूरी तरह त्याग कर; सौहृदम्—अपनी मित्रता।

विविध यदुवंशियों—दाशार्हों, वृष्णियों तथा अंधकों, भोजों, सात्वतों, मधुओं तथा अर्बुदों, माथुरों, शूरसेनों, विसर्जनों, कुकुरों तथा कुन्तियों ने अपनी अपनी सहज मित्रता त्याग कर एक-दूसरे को मार-काट डाला।

पुत्रा अयुध्यन्पितृभिर्भ्रातृभिश्च
स्वस्रीयदौहित्रपितृव्यमातुलैः ।

मित्राणि मित्रैः सुहृदः सुहृद्भि-
र्ज्ञातींस्त्वहन्ज्ञातय एव मूढाः ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

पुत्राः—पुत्र; अयुध्यन्—लड़े; पितृभिः—अपने पिताओं से; भ्रातृभिः—भाइयों से; च—तथा; स्वस्त्रीय—बहनों के लड़कों से; दौहित्र—पुत्रियों के पुत्र; पितृव्य—चाचाओं; मातुलैः—तथा मामाओं से; मित्राणि—मित्र; मित्रैः—मित्रों से; सुहृदः—शुद्ध चिन्तक; सुहृद्भिः—शुभचिन्तकों से; ज्ञातीन्—निकट सम्बन्धी; तु—तथा; अहन्—मार डाला; ज्ञातयः—निकट सम्बन्धी; एव—निस्सन्देह; मूढाः—विमोहित।

इस तरह मोहग्रस्त हुए पुत्र अपने पिताओं से, भाई भाइयों से, भाँजे अपने मामाओं से, भतीजे अपने चाचों से और नाती अपने पितामहों से लड़ने लगे। मित्र अपने मित्रों से तथा शुभचिन्तक अपने शुभचिन्तकों से भिड़ गये। इस तरह घनिष्ठ मित्रों तथा सम्बन्धियों ने एक-दूसरे को मार डाला।

शरेषु हीयमाएषु भज्यमानेसु धन्वसु ।
शस्त्रेषु क्षीयमानेषु मुष्टिभिर्जह्वरेरकाः ॥ २० ॥

शब्दार्थ

शरेषु—बाणों; हीयमानेषु—समाप्त हुए; भज्यमानेषु—नष्ट-भ्रष्ट हुए; धन्वसु—धनुष; शस्त्रेषु—प्रक्षेप्यास्त्र; क्षीयमानेषु—समाप्त हुए; मुष्टिभिः—अपनी मुट्ठियों से; जह्वः—पकड़ लिया; एरकाः—बेंत के तने।

जब उनके सारे धनुष टूट गये और उनके बाण तथा अन्य प्रक्षेपास्त्र समाप्त हो गये तो उन्होंने अपने खाली हाथों में बेंत के लम्बे लम्बे डंठल ले लिये।

ता वज्रकल्पा ह्यभवन्परिघा मुष्टिना भृताः ।
जघ्नुर्द्विषस्तैः कृष्णेन वार्यमाणास्तु तं च ते ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

ताः—वे डंठल; वज्र-कल्पाः—वज्र की तरह कठोर; हि—निस्सन्देह; अभवन्—हो गये; परिघाः—लोहे का डंडा; मुष्टिना—अपनी मूट्ठियों में; भृताः—पकड़े; जघ्नुः—आक्रमण किया; द्विषः—उनके शत्रु; तैः—इनसे; कृष्णेन—भगवान् कृष्ण द्वारा; वार्यमाणाः—रोके जाने पर; तु—यद्यपि; तम्—उसको; च—भी; ते—वे।

ज्योंही उन लोगों ने इन बेंत के डंठलों को अपनी मुट्ठियों में धारण किया, वे वज्र की तरह कठोर लोहे के डंडों में बदल गये। योद्धा इन हथियारों से एक-दूसरे पर बारम्बार आक्रमण करने लगे और जब कृष्ण ने उन्हें रोकने का प्रयास किया, तो उन्होंने उन पर भी आक्रमण कर दिया।

प्रत्यनीकं मन्यमाना बलभद्रं च मोहिताः ।

हन्तुं कृतधियो राजन्नापन्ना आततायिनः ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

प्रत्यनीकम्—शत्रु; मन्यमानाः—सोचते हुए; बलभद्रम्—बलराम को; च—भी; मोहिताः—मोहित; हन्तुम्—मारने के लिए; कृत-धियः—संकल्प करके; राजन्—हे राजा परीक्षित; आपन्नाः—वे उन पर टूट पड़े; आततायिनः—हथियार भाँजते।

हे राजा, उन सबों ने विमोहित अवस्था में बलराम को भी अपना शत्रु समझ लिया। वे हाथों में हथियार लिए उन्हें मार डालने के इरादे से उनकी ओर दौ।

अथ तावपि सङ्क्रुद्धावुद्यम्य कुरुनन्दन ।
एरकामुष्टिपरिघौ चरन्तौ जघ्नतुर्युधि ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

अथ—तब; तौ—दोनों (कृष्ण तथा बलराम); अपि—भी; सङ्क्रुद्धौ—अत्यधिक क्रोध में; उद्यम्य—लड़ाई में हिस्सा लेते हुए; कुरु-नन्दन—हे कुरुओं के प्रिय पुत्र; एरका-मुष्टि—अपनी मुट्ठियों में बेंत; परिघौ—मुद्गर की तरह इस्तेमाल करते; चरन्तौ—इधर-उधर घूमते हुए; जघ्नतुः—मारने लगे; युधि—युद्धक्षेत्र में।

हे कुरु-पुत्र, तब कृष्ण तथा बलराम अत्यधिक कुपित हो उठे। बेंत के डंठलों को उठाते हुए वे युद्धभूमि के भीतर इधर-उधर घूमने लगे और इन मुद्गरों से उन्हें मारने लगे।

ब्रह्मशापोपसृष्टानां कृष्णमायावृतात्मनाम् ।
स्पर्धाक्रोधः क्षयं निन्ये वैणवोऽग्निर्यथा वनम् ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

ब्रह्म-शाप—ब्राह्मणों के शाप से; उपसृष्टानाम्—पराजितों के; कृष्ण-माया—भगवान् कृष्ण की मायाशक्ति से; आवृत—आच्छन्न; आत्मनाम्—उनके जिनके मन; स्पर्धा—स्पर्धा से उत्पन्न; क्रोधः—क्रोध; क्षयम्—विनाश को; निन्ये—प्राप्त किया; वैणवः—बाँस के वृक्षों की; अग्निः—आग; यथा—जिस तरह; वनम्—जंगल को।

ब्राह्मणों के शाप से पराजित तथा भगवान् कृष्ण की माया से विमोहित, वे योद्धा भीषण क्रोध से, अब निज संहार को प्राप्त हुए, जिस तरह बाँस के कुंज में लगी आग सारे जंगल को नष्ट कर देती है।

एवं नष्टेषु सर्वेषु कुलेषु स्वेषु केशवः ।
अवतारितो भुवो भार इति मेनेऽवशेषितः ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार से; नष्टेषु—नष्ट हुए; सर्वेषु—समस्त; कुलेषु—कुल के; स्वेषु—अपने; केशवः—कृष्ण ने; अवतारितः—कम किया; भुवः—पृथ्वी का; भारः—बोझ; इति—इस प्रकार; मेने—सोचा; अवशेषितः—शेष।

जब उनके कुल के सारे सदस्य इस प्रकार विनष्ट हो गये, तो कृष्ण ने अपने आप सोचा कि चलो धरती का बोझ तो हटा।

रामः समुद्रवेलायां योगमास्थाय पौरुषम् ।
तत्याज लोकं मानुष्यं संयोज्यात्मानमात्मनि ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

रामः—बलराम; समुद्र—समुद्र के; वेलायाम्—तट पर; योगम्—ध्यान; आस्थाय—अपनाकर; पौरुषम्—भगवान् पर; तत्याज—त्याग दिया; लोकम्—संसार को; मानुष्यम्—मनुष्य का; संयोज्य—लीन होकर; आत्मानम्—अपने को; आत्मनि—अपने में।

तब बलरामजी समुद्र के तट पर बैठ गये और उन्होंने भगवान् के ध्यान में अपने को स्थिर कर लिया। अपने को अपने में ही लीन करते हुए उन्होंने यह मर्त्य संसार छोड़ दिया।

रामनिर्याणमालोक्य भगवान्देवकीसुतः ।
निषसाद धरोपस्थे तुष्णीमासाद्य पिप्पलम् ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

राम-निर्याणम्—बलराम का गमन; आलोक्य—देख कर; भगवान्—भगवान्; देवकी-सुतः—देवकी-पुत्र; निषसाद—बैठ गये; धरा-उपस्थे—पृथ्वी की गोद में; तुष्णीम्—मौन होकर; आसाद्य—पाकर; पिप्पलम्—पीपल का वृक्ष।

बलराम के प्रस्थान को देख कर देवकी-पुत्र भगवान् कृष्ण पास के पीपल के वृक्ष के नीचे पृथ्वी पर चुपचाप बैठ गये।

बिभ्रच्चतुर्भुजं रूपं भ्राजिष्णु प्रभया स्वया ।
दिशो वितिमिराः कुर्वन्विधूम इव पावकः ॥ २८ ॥
श्रीवत्साङ्कं घनश्यामं तप्तहाटकवर्चसम् ।
कौशेयाम्बरयुग्मेन परिवीतं सुमङ्गलम् ॥ २९ ॥
सुन्दरस्मितवक्त्राब्जं नीलकुन्तलमण्डितम् ।
पुण्डरीकाभिरामाक्षं स्फुरन्मकरकुण्डलम् ॥ ३० ॥
कटिसूत्रब्रह्मसूत्रकिरीटकटकाङ्गदैः ।
हारनूपुरमुद्राभिः कौस्तुभेन विराजितम् ॥ ३१ ॥
वनमालापरीताङ्गं मूर्तिमद्भिर्निजायुधैः ।
कृत्वोरौ दक्षिणे पादमासीनं पङ्कजारुणम् ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

बिभ्रत्—धारण किये; चतुः-भुजम्—चारों भुजाओं से; रूपम्—अपना रूप; भ्राजिष्णु—चमकीला; प्रभया—तेज से; स्वया—अपने; दिशः—सारी दिशाएँ; वितिमिराः—अंधकार से रहित; कुर्वन्—करते हुए; विधूमः—धूम्र से रहित; इव—सदृश; पावकः—अग्नि; श्रीवत्स-अङ्कम्—श्रीवत्स चिह्न समेत; घन-श्यामम्—बादलों की तरह श्याम; तप्त—पिघले; हाटक—सोने के समान; वर्चसम्—उनका चमचमाता तेज; कौशेय—रेशमी; अम्बर—वस्त्र की; युग्मेन—जोड़ी से; परिवीतम्—पहने हुए; सु-मङ्गलम्—सर्वमंगलकारी; सुन्दर—सुन्दर; स्मित—हँसी से; वक्त्र—उनका मुखमंडल; अब्जम्—कमल के समान; नील—नीला; कुन्तल—घुंघराले बालों से; मण्डितम्—(उनके सिर) अलंकृत; पुण्डरीक—कमल; अभिराम—सुहावने; अक्षम्—नेत्र;

स्फुरत्—हिलते हुए; मकर—मछली के आकार की; कुण्डलम्—उनके कान की बालियाँ; कति-सूत्र—करधनी से; ब्रह्म-सूत्र—जनेऊ; किरीट—मुकुट; कटक—कंगन; अङ्गदैः—तथा बाजूबंद से; हार—गले का हार; नूपुर—पायल; मुद्राभिः—तथा राजसी प्रतीकों से; कौस्तुभेन—कौस्तुभ मणि से; विराजितम्—सुशोभित; वन-माला—फूल की माला से; परीत—घिरे; अङ्गम्—उनके अंग; मूर्ति-मद्भिः—साक्षात्; निज—अपने; आयुधैः—तथा हथियारों से; कृत्वा—रख कर; उरौ—जाँघ पर; दक्षिणे—दाहिनी; पादम्—पाँव; आसीनम्—बैठे हुए; पङ्कज—कमल की तरह; अरुणम्—लाल-लाल।

भगवान् अपना अत्यन्त तेजोमय चतुर्भुजी रूप प्रकट कर रहे थे जिसकी प्रभा धूम्रविहीन अग्नि की तरह सारी दिशाओं के अंधकार को दूर करने वाली थी। उनका वर्ण गहरे नीले बादल के रंग का था और उनका ऐश्वर्य पिघले सोने के रंग जैसा था तथा उनका सर्वमंगल स्वरूप श्रीवत्स का चिन्ह धारण किये था। उनके कमल जैसे मुखमंडल पर सुन्दर हँसी थी, उनके सिर पर श्याम रंग के बालों का गुच्छा सुशोभित था, उनकी कमल जैसी आँखें अत्यन्त आकर्षक थीं और उनके मकराकृति जैसे कुंडल चमक रहे थे। वे रेशमी वस्त्र की जोड़ी, अलंकृत पेटी, जनेऊ, कंगन तथा बाजूबन्द पहने थे। वे मुकुट, कौस्तुभ मणि, गले का हार, पायल तथा अन्य राजसी चिन्ह धारण किये थे। उनके शरीर में फूलों की मालाएँ पड़ी थीं और उनके आयुध अपने साकार रूप में थे। वे बैठे हुए थे और उनका बायाँ पैर, जिसका तलवा लाल कमल जैसा था, उनकी दाहिनी जाँघ पर रखा था।

मुषलावशेषायःखण्डकृतेषुर्लुब्धको जरा ।
मृगास्याकारं तच्चरणं विव्याध मृगशङ्कया ॥ ३३॥

शब्दार्थ

मुषल—लोहे की गदा से; अवशेष—बचा हुआ; अयः—लोहे का; खण्ड—टुकड़े से; कृत—बनाया गया; इषुः—तीर; लुब्धकः—शिकारी; जरा—जरा नामक; मृग—मृग का; आस्य—मुँह का; आकारम्—आकार वाला; तत्—उसका; चरणम्—पैर; विव्याध—बेध डाला; मृग-शङ्कया—मृग समझ कर।

तभी जरा नामक शिकारी जो उस स्थान पर आया था, भगवान् के पाँव को मृग का मुख समझ बैठा। यह सोच कर कि उसे उसका शिकार मिल गया है, जरा ने उस पाँव को अपने उस तीर से बेध डाला जिसे उसने साम्ब की गदा के बचे हुए लोहे के टुकड़े से बनाया था।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर के अनुसार यह कथन कि, ''बाण ने भगवान् के पाँव को बेध दिया'' शिकारी के दृष्टिकोण को व्यक्त करता है, जिसने सोचा कि उसने मृग को मार दिया है। वास्तव में उस बाण ने भगवान् के चरणकमल का स्पर्श मात्र ही किया था, बेधा नहीं था क्योंकि भगवान् के अंग सच्चिदानन्द रूप हैं। अन्यथा, अगले श्लोक के वर्णन में (कि शिकारी डर गया और

भगवान् के चरणकमलों में सिर रख कर गिर पड़ा) शुकदेव गोस्वामी यह बतलाये होते कि बहेलिये ने भगवान् के चरण से अपना तीर निकाला।

चतुर्भुजं तं पुरुषं दृष्ट्वा स कृतकिल्बिषः ।
भीतः पपात शिरसा पादयोरसुरद्विषः ॥ ३४॥

शब्दार्थ

चतुः-भुजम्—चार भुजाओं वाले; तम्—उस; पुरुषम्—पुरुष को; दृष्ट्वा—देख कर; सः—वह; कृत-किल्बिषः—अपराध करके; भीतः—डरा हुआ; पपात—गिर पड़ा; शिरसा—सिर के बल; पादयोः—चरणों पर; असुर-द्विषः—असुरों के शत्रु, भगवान् के।

तत्पश्चात् उस चतुर्भुज पुरुष को देख कर, शिकारी अपने द्वारा किये गये अपराध से भयभीत हो उठा और वह असुरों के शत्रु के चरणों पर अपना सिर रख कर जमीन पर गिर पड़ा।

अजानता कृतमिदं पापेन मधुसूदन ।
क्षन्तुमर्हसि पापस्य उत्तमःश्लोक मेऽनघ ॥ ३५॥

शब्दार्थ

अजानता—अनजाने में; कृतम्—किया गया; इदम्—यह; पापेन—पापी पुरुष से; मधुसूदन—हे मधुसूदन; क्षन्तुम् अर्हसि—क्षमा कर दें; पापस्य—पापी व्यक्ति का; उत्तमः-श्लोक—हे यशस्वी प्रभु; मे—मेरा; अनघ—हे पापरहित।

जरा ने कहा : हे मधुसूदन, मैं अत्यन्त पापी व्यक्ति हूँ। मैंने अनजाने में ही यह कृत्य (पाप) किया है। हे शुद्धतम प्रभु, हे उत्तमश्लोक, कृपा करके इस पापी को क्षमा कर दें।

यस्यानुस्मरणं नृणामज्ञानध्वान्तनाशनम् ।
वदन्ति तस्य ते विष्णो मयासाधु कृतं प्रभो ॥ ३६॥

शब्दार्थ

यस्य—जिसका; अनुस्मरणम्—निरन्तर स्मृति; नृणाम्—सारे मनुष्यों के; अज्ञान—अज्ञान का; ध्वान्त—अंधकार; नाशनम्—नाश करने वाले; वदन्ति—कहते हैं; तस्य—उनकी ओर; ते—तुम्हारा; विष्णो—हे भगवान् विष्णु; मया—मेरे द्वारा; असाधु—गलती से; कृतम्—किया हुआ; प्रभो—हे प्रभु।

हे भगवान् विष्णु, विद्वान लोग कहते हैं कि आपका निरन्तर स्मरण करने से किसी के भी अज्ञान का अंधकार नष्ट हो जाता है। हे प्रभु, मैंने आपका अनिष्ट किया है।

तन्माशु जहि वैकुण्ठ पाप्मानं मृगलुब्धकम् ।
यथा पुनरहं त्वेवं न कुर्यां सदतिक्रमम् ॥ ३७॥

शब्दार्थ

तत्—इसलिए; मा—मुझे; आशु—तुरन्त; जहि—मार डालो; वैकुण्ठ—हे वैकुण्ठ-पति; पाप्मानम्—पापी; मृग-लुब्धकम्—बहेलिये को; यथा—जिस तरह; पुनः—फिर; अहम्—मैं; तु—निस्संदेह; एवम्—इस प्रकार; न कुर्याम्—न कर सकूँ; सत्—सत्पुरुषों के विरुद्ध; अतिक्रमम्—अतिक्रमण।

अतएव हे वैकुण्ठपति, आप इस पापी पशु-शिकारी को तुरन्त मार डालें जिससे वह सत्पुरुषों के साथ पुनः ऐसा अपराध न कर सके।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर बतलाते हैं कि यदुवंश का बंधुघाती युद्ध तथा भगवान् कृष्ण पर शिकारी का आक्रमण भगवान् की लीला-इच्छाओं को पूरा करने के उद्देश्य से भगवान् की अन्तरंगा शक्ति के कार्यकलाप हैं। प्रमाण के अनुसार, यदुवंशियों में झगड़ा सूर्यास्त के समय शुरू हुआ। तब भगवान् सरस्वती नदी के किनारे बैठ गये। कहा जाता है कि तभी एक शिकारी मृग मारने के इरादे से वहाँ आया, किन्तु जहाँ ५६०० लाख योद्धा तुमुल युद्ध में मारे गये हों और खून से लथपथ शव पड़े हों वहाँ एक शिकारी मृग मारने के प्रयास में किस तरह पहुँच सकता है। चूँकि मृग स्वभाव से भीरु होता है, अतएव ऐसे विशाल युद्धक्षेत्र में मृग कैसे आ सकता है और किस तरह एक साधारण शिकारी ऐसे नर-संहार के बीच अपना कार्य कर सकता है? इसलिए यदुवंश का लोप तथा कृष्ण का इस धरा से अन्तर्धान होना ऐतिहासिक घटनाएँ नहीं हैं, प्रत्युत वे पृथ्वी पर अपनी प्रकट लीलाओं को समाप्त करने के उद्देश्य से भगवान् की अंतरंगा शक्ति का प्रदर्शन थीं।

यस्यात्मयोगरचितं न विदुर्विरिञ्चो
रुद्रादयोऽस्य तनयाः पतयो गिरां ये ।
त्वन्माययापिहितदृष्टय एतदञ्जः
किं तस्य ते वयमसद्गतयो गृणीमः ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

यस्य—जिसका; आत्म-योग—निजी योगशक्ति से; रचितम्—उत्पन्न; न विदुः—नहीं समझते; विरिञ्चः—ब्रह्मा; रुद्र-आदयः—शिव तथा अन्य; अस्य—उसके; तनयाः—पुत्र; पतयः—स्वामी; गिराम्—वेद के शब्दों के; ये—जो; त्वत्-मायया—आपकी माया द्वारा; पिहित—ढके, आवृत; दृष्टयः—जिसकी दृष्टि; एतत्—इसका; अञ्जः—सीधे; किम्—क्या; तस्य—उसका; ते—तुम्हारा; वयम्—हम; असत्—अशुद्ध; गतयः—जिसका जन्म; गृणीमः—कहेगा।

न तो ब्रह्मा, न ही रुद्र आदि उनके पुत्र, न ही वैदिक मंत्रों के स्वामी कोई महर्षि ही, आपकी योगशक्ति के कार्य को समझ सकते हैं। चूँकि आपकी योगशक्ति ने उनकी दृष्टि को ढक रखा है, इसलिए आपकी योगशक्ति जिस तरह कार्य करती है उसके बारे में वे अनजान बने रहते हैं। इसलिए निम्न कुल में जन्मा व्यक्ति मैं किस तरह इसके विषय में कुछ कह सकता हूँ?

श्रीभगवानुवाच
मा भैर्जरे त्वमुत्तिष्ठ काम एष कृतो हि मे ।
याहि त्वं मदनुज्ञातः स्वर्गं सुकृतिनां पदम् ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् ने कहा; मा भैः—मत डरो; जरे—हे जरा; त्वम्—तुम; उत्तिष्ठ—उठो; कामः—इच्छा; एषः—यह; कृतः—किया गया; हि—निस्सन्देह; मे—मेरा; याहि—जाओ; त्वम्—तुम; मत्-अनुज्ञातः—मेरी अनुमति से; स्वर्गम्—स्वर्गलोक को; सु-कृतिनाम्—पवित्रों का; पदम्—धाम।

भगवान् ने कहा : हे जरा, तुम मत डरो। उठो। जो कुछ हुआ है वास्तव में वह मेरी अपनी इच्छा है। मेरी अनुमति से तुम अब पवित्र लोगों के धाम, स्वर्गलोक, जाओ।

इत्यादिष्टो भगवता कृष्णेनेच्छाशरीरिणा ।
त्रिः परिक्रम्य तं नत्वा विमानेन दिवं ययौ ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; आदिष्टः—आदेश दिया गया; भगवता—भगवान् द्वारा; कृष्णेन—कृष्ण द्वारा; इच्छा-शरीरिणा—जिसका दिव्य शरीर केवल उनकी इच्छा से प्रकट होता है; त्रिः—तीन बार; परिक्रम्य—परिक्रमा करके; तम्—उनको; नत्वा—शीश झुकाकर; विमानेन—स्वर्ग के वायुयान द्वारा; दिवम्—आकाश में; ययौ—चला गया।

अपनी इच्छा से अपना दिव्य शरीर धारण करने वाले भगवान् कृष्ण का आदेश पाकर उस शिकारी ने भगवान् की तीन बार परिक्रमा की और उन्हें शीश झुकाया। तत्पश्चात् उस शिकारी ने उस विमान से प्रस्थान किया जो उसे स्वर्ग ले जाने के लिए उसी समय प्रकट हुआ था।

दारुकः कृष्णपदवीमन्विच्छन्नधिगम्य ताम् ।
वायुं तुलसिकामोदमाघ्रायाभिमुखं ययौ ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

दारुकः—कृष्ण का सारथी दारुक; कृष्ण—कृष्ण का; पदवीम् अन्विच्छन्—ढूँढते हुए; अधिगम्य—पहुँच कर; ताम्—उसे; वायुम्—वायु; तुलसिका-आमोदम्—तुलसी के फूलों की गंध से सुगन्धित; आघ्राय—सूँघ कर; अभिमुखम्—उनकी ओर; ययौ—चला गया।

उसी समय दारुक अपने स्वामी कृष्ण को ढूँढ रहा था। ज्योंही वह उस स्थान के पास पहुँचा जहाँ भगवान् बैठे थे, उसने मन्द वायु में तुलसी के फूलों की गन्ध का अनुभव किया और उसी दिशा में बढ़ता गया।

तं तत्र तिग्मद्युभिरायुधैर्वृतं
ह्यश्वत्थमूले कृतकेतनं पतिम् ।

स्नेहप्लुतात्मा निपपात पादयो
रथादवप्लुत्य सबाष्पलोचनः ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

तम्—उनको; तत्र—वहाँ; तिग्म—तेजस्वी; द्युभिः—तेज से; आयुधैः—उनके हथियारों से; वृतम्—घिरा; हि—निस्सन्देह; अश्वत्थ—बरगद के वृक्ष के; मूले—नीचे; कृत-केतनम्—विश्राम करते; पतिम्—अपने स्वामी को; स्नेह—स्नेह से; प्लुत—अभिभूत; आत्मा—उसका हृदय; निपपात—वह गिर पड़ा; पादयोः—उनके चरणों पर; रथात्—रथ से; अवप्लुत्य—नीचे उतरते हुए; स-बाष्प—आँसुओं से पूरित; लोचनः—आँखें।

भगवान् कृष्ण को बरगद के वृक्ष के मूल पर आराम करते और उनके चमचमाते हथियारों से घिरा हुआ देख कर, दारुक अपने हृदय में सँजोये स्नेह को सँभाल न सका। वह ज्योंही रथ से नीचे उतरा उसकी आँखों में आँसू भर आये और वह भगवान् के चरणों पर गिर पड़ा।

अपश्यतस्त्वच्चरणाम्बुजं प्रभो
दृष्टिः प्रणष्टा तमसि प्रविष्टा ।
दिशो न जाने न लभे च शान्तिं
यथा निशायामुडुपे प्रणष्टे ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

अपश्यतः—न देख रहा, मेरा; त्वत्—तुम्हारे; चरण-अम्बुजम्—चरणकमल; प्रभो—हे स्वामी; दृष्टिः—आँख की ज्योति; प्रणष्टा—विनष्ट हो चुकी है; तमसि—अंधकार में; प्रविष्टा—प्रवेश किया हुआ; दिशः—दिशाएँ; न जाने—नहीं जानता हूँ; न लभे—नहीं प्राप्त कर सकता हूँ; च—तथा; शान्तिम्—शान्ति; यथा—जिस तरह; निशायाम्—रात में; उडुपे—चन्द्रमा के; प्रणष्टे—नवीन हो जाने पर।

दारुक ने कहा : जिस तरह चन्द्रविहीन रात में लोग अंधकार में धँस जाते हैं और अपना रास्ता नहीं ढूँढ पाते हे प्रभु, अब मुझे आपके चरणकमल नहीं दिखते, मैं अपनी दृष्टि खो चुका हूँ और अंधकार में अंधे की तरह घूम रहा हूँ। न तो मैं अपनी दिशा बता सकता हूँ न कहीं कोई शान्ति पा सकता हूँ।

इति ब्रुवति सूते वै रथो गरुडलाञ्छनः ।
खमुत्पपात राजेन्द्र साश्वध्वज उदीक्षतः ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; ब्रुवति—बोलते-बोलते; सूते—सारथी के; वै—निस्सन्देह; रथः—रथ; गरुड-लाञ्छनः—गरुड़ पताका से अंकित; खम्—आकाश में; उत्पपात—उठा; राज-इन्द्र—हे राजाओं के राजा (परीक्षित); स-अश्व—घोड़ों समेत; ध्वजः—तथा झंडा; उदीक्षतः—ऊपर देखते देखते।

[शुकदेव गोस्वामी ने कहा] हे राजाओं में प्रधान, अभी वह सारथी बातें कर ही रहा था कि उसकी आँखों के सामने भगवान् का रथ अपने घोड़ों तथा गरुड़ से अंकित झंडे समेत ऊपर उठ

गया।

तमन्वगच्छन्दिव्यानि विष्णुप्रहरणानि च ।
तेनातिविस्मितात्मानं सूतमाह जनार्दनः ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ

तम्—उस रथ को; अन्वगच्छन्—उसका पीछा किया; दिव्यानि—दैवी; विष्णु—भगवान् विष्णु का; प्रहरणानि—हथियार; च—तथा; तेन—उस घटना से; अति-विस्मित—अचम्भित; आत्मानम्—उसका मन; सूतम्—सारथी से; आह—कहा; जनार्दनः—भगवान् श्रीकृष्ण।

विष्णु के सारे दैवी हथियार ऊपर उठ गये और रथ का पीछा करने लगे। तब जनार्दन अपने उस सारथी से जो यह सब देख कर अत्यधिक चकित था, बोले।

गच्छ द्वारवतीं सूत ज्ञातीनां निधनं मिथः ।
सङ्कर्षणस्य निर्याणं बन्धुभ्यो ब्रूहि मद्दशाम् ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

गच्छ—जाओ; द्वारवतीम्—द्वारका को; सूत—हे सारथी; ज्ञातीनाम्—उनके सगे-सम्बन्धियों का; निधनम्—संहार; मिथः—पारस्परिक; सङ्कर्षणस्य—बलराम का; निर्याणम्—निधन; बन्धुभ्यः—हमारे परिवार वालों से; ब्रूहि—कहना; मत्-दशाम्—मेरी दशा।

हे सारथी, तुम द्वारका जाओ और हमारे परिवार वालों से कहो कि किस तरह उनके प्रियजनों ने एक-दूसरे का विनाश कर दिया है। उनसे संकर्षण के तिरोधान तथा मेरी वर्तमान दशा के विषय में भी बतलाना।

तात्पर्य : भगवान् कृष्ण ने अपने रथ को, बिना सारथी के, किन्तु घोड़ों तथा हथियार सहित, वैकुण्ठ वापस भेज दिया क्योंकि दारुक को पृथ्वी पर कुछ अन्तिम कार्य करना शेष था।

द्वारकायां च न स्थेयं भवद्भिश्च स्वबन्धुभिः ।
मया त्यक्तां यदुपुरीं समुद्रः प्लावयिष्यति ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ

द्वारकायाम्—द्वारका में; च—तथा; न स्थेयम्—नहीं रहना चाहिए; भवद्भिः—तुम; च—तथा; स्व-बन्धुभिः—अपने सम्बन्धियों सहित; मया—मेरे द्वारा; त्यक्ताम्—छोड़ी हुई; यदु-पुरीम्—यदुओं की राजधानी; समुद्रः—समुद्र; प्लावयिष्यति—डूबो देगा।

''तुम्हें तथा तुम्हारे सम्बन्धियों को यदुओं की राजधानी द्वारका में नहीं रहना चाहिए क्योंकि एक बार जब मैं उस नगरी को छोड़ चुका हूँ, तो यह समुद्र से आप्लावित हो जायेगी।''

स्वं स्वं परिग्रहं सर्वे आदाय पितरौ च नः ।
अर्जुनेनाविताः सर्व इन्द्रप्रस्थं गमिष्यथ ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ

स्वम् स्वम्—अपने अपने; परिग्रहम्—परिवार; सर्वे—सभी; आदाय—लेकर; पितरौ—माता-पिता; च—तथा; नः—हमारा; अर्जुनेन—अर्जुन द्वारा; अविताः—सुरक्षित; सर्वे—सभी; इन्द्रप्रस्थम्—इन्द्रप्रस्थ को; गमिष्यथ—तुम चले जाना।

तुम सबों को अपने अपने परिवार तथा साथ में मेरे माता-पिता को लेकर अर्जुन के संरक्षण में इन्द्रप्रस्थ चले जाना चाहिए।

त्वं तु मद्धर्ममास्थाय ज्ञाननिष्ठ उपेक्षकः ।
मन्मायारचितामेतां विज्ञयोपशमं व्रज ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ

त्वम्—तुम; तु—किन्तु; मत्-धर्मम्—मेरी भक्ति में; आस्थाय—दृढ़ रह कर; ज्ञान-निष्ठः—ज्ञान में स्थिर; उपेक्षकः—उदासीन; मत्-माया—मेरी माया से; रचिताम्—उत्पन्न; एताम्—यह; विज्ञाय—समझते हुए; उपशमम्—क्षोभ से मुक्ति; व्रज—प्राप्त करो।

हे दारुक, तुम आध्यात्मिक ज्ञान में स्थिर रहते हुए और भौतिक विचारों से अनासक्त रहते हुए, मेरी भक्ति में दृढ़ता से स्थित रहना। तुम इन लीलाओं को मेरी मायाशक्ति का प्रदर्शन समझते हुए शान्त रहते जाना।

तात्पर्य : श्रील जीव गोस्वामी के अनुसार *तु* शब्द इस बात पर बल देता है कि दारुक भगवान् कृष्ण का नित्यमुक्त संगी है, जो वैकुण्ठ से अवतरित हुआ है। इसलिए भले ही अन्य लोग भगवान् की लीलाओं से विमोहित क्यों न हो जाँय, दारुक को तो शान्त तथा आध्यात्मिक ज्ञान में स्थिर रहते जाना है।

इत्युक्तस्तं परिक्रम्य नमस्कृत्य पुनः पुनः ।
तत्पादौ शीर्ष्ण्युपाधाय दुर्मनाः प्रययौ पुरीम् ॥ ५० ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; उक्तः—कहा गया; तम्—उससे; परिक्रम्य—परिक्रमा करके; नमः-कृत्य—नमस्कार करके; पुनः पुनः—बारम्बार; तत्-पादौ—उनके चरणकमलों पर; शीर्ष्णि—उसके सिर पर; उपाधाय—रख कर; दुर्मनाः—मन में दुखी; प्रययौ—चला गया; पुरीम्—नगरी को।

इस तरह आदेश पाकर दारुक ने भगवान् की परिक्रमा की और उन्हें बारम्बार नमस्कार किया। उसने भगवान् के चरणकमल अपने सिर पर रखे और तब उदास मन से वह नगर को लौट गया।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के ग्यारहवें स्कंध के ''यदुवंश का संहार'' नामक तीसवें अध्याय के श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।